'दिनकर की कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के स्वर'

डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र

विकासवाद के नियमों के अनुसार किसी भी समाज, राष्ट्र या भौतिक सत्ता का विकास परम्परा और युग धर्म के पारस्परिक संयोजन से होता हैं। किन्तु जब इन दोनों में समय के प्रभाव से प्रतिकूलता आती हैं तो समाज के विकास की गति अवरुद्ध हो जाती हैं। ऐसे समय में कोई महान पुरुष अवतरित होता है; जो परम्परा को नया रूप प्रदान करके उन्हे युगधर्म के अनुकूल बनाता है।

साहित्य के क्षेत्र में 'दिनकर' का उदय उस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा से हुआ जो भारतेन्दु, गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', से होकर बहती आ रही थी जिन्होंने परम्परा को युगधर्म के अनुकूल बनाने में प्रयास किया।

दूसरी धारा में विशेषरूप से बच्चन का नाम आता हैं। चौथे दशक में इन दोनों कवियों के आगमन के पश्चात् जनता में खड़ी बोली की कविता के लिए जो उत्साह उमड़ पड़ा, वह पहले कभी नहीं जगा था। इसके साथ-साथ हिन्दी कविता कुछ विशिष्ट जनों की सम्पत्ति मात्र न रहकर जनता में उतर आई। लोगों की जबान पर इनके गीत गुन-गुनाने लगे। आज भी उनकी कविताएँ हमारी संवेदनाओं को झकझोर कर रख देती हैं।

इस युग की देशभक्ति के अन्तर्गत डॉ. नगेन्द्र ने तीन बातों का उल्लेख किया है—

1. प्राचीन आर्य गौरव-इसके अन्तर्गत वेद, शास्त्र, उपनिषद, रामायण, महाभारत, चन्द्रगुप्त और अशोक आदि का गौरवगान।

2. विदेशी संस्कृति और समस्या के प्रति घृणा।

3. वर्तमान अधःपतन—विशेषतः सामाजिक अधःपतन—उदाहरण केलिए अनाचार, अशिक्षा, वर्णाश्रम की अव्यवस्था, अछूतों और स्त्रियों की हीन अवस्था के प्रति चिंता और विद्रोह आदि का समावेश था।

दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक और रोमांस का स्वर प्रमुख रूप से उभरकर हमारे सामने आता है। यही इनके काव्य का वैशिष्ट्य है। दिनकर को जनता का प्यार उनकी राष्ट्रीय कविताओं के कारण मिला। इनकी काव्य रचनाओं को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. स्वतन्त्रता से पूर्व की कृतियाँ—जिसके अन्तर्गत रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, द्वन्द्व-गीत, कुरुक्षेत्र, सामधेनी, धूप-छाँह, मिट्टी की ओर और बापू हैं।

2. आजादी के पश्चात् की कृतियों के अन्तर्गत—दिल्ली, रश्मिरथी, अर्द्धनारीश्वर, नीम के पत्ते, धूप और धुआँ, नीलकुसुम, सीपी और शंख, नये सुभाषित, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, कोयला और कवित्व, आत्मा की आँखें, चक्रवात और इतिहास के आँसू आदि हैं।

विषय की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए और कृतियों की अधिकता के कारण मैं कुछ विशिष्ट रचनाओं के माध्यम से ही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की बात करूँगा।

दोनों का संयोग :

दिनकर में रोमांस और राष्ट्रीय-चेतना की सम्मिलित प्रवृत्तियाँ मिलती हैं और सच्चाई तो यह है कि एक को स्वस्थ भूमि देकर तथा दूसरे को सांस्कृतिक दिशा देकर, दोनों के संयोग से उन्होंने अपनी आज तक की यात्रा पूरी की है। 'उर्वशी' में उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति आदर्शीकृत होती है और कुरुक्षेत्र में सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना मौजूद हैं। दिनकर कभी 'रेशमी नगर' जैसी कविताएँ लिखते हैं, जिसमें दिल्ली के नये भोगविलास का जिक्र है और कभी आक्रोशी मुद्रा में आने पर 'परशुराम की प्रतीक्षा।'

आरम्भिक काव्य-संग्रहों में शृंगार और हुँकार की सम्मिलित भूमि देखी जा सकती है। प्रथम काव्यसंग्रह रेणुका में कवि अपने को अधिक वास्तविक भूमि पर लाना चाहता है—

व्योम कुंजों को परी अयि कल्पने,
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं,
उड़ न सकते हम धुमैले स्वप्न तक
शक्ति हो तो आ, बसा अलका यहीं!

काव्य-संकलन के आरम्भ में 'युगधर्म' और 'जागृति-हुँकार' की बात कही गयी है। 'हिमालय के प्रति' कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की खुली अभिव्यक्ति हुई हैं।

रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उसको स्वर्ग धीर
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर
कह दे शंकर से, आज करें,
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार।
सारे भारत में गूँज उठे,
हर-हर बम का फिर महोच्चार।

'रेणुका' काव्य-संग्रह में रोमानी भावनाएँ राष्ट्रीय चेतना को साथ लेकर चली पर 'हुंकार' में कवि अधिक आक्रोशी मुद्रा अपनाता है और क्रान्ति की बात करता है। सामाजिक विषमता के प्रति तीखा प्रहार करते हुए दिनकरजी कहते हैं—

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक
अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की
रात बिताते है,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज
चुकाए जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा
द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार, देता मुझको
तब आमंत्रण।

कवि की उपर्युक्त पंक्तियाँ आज भी प्रासंगिक है। आजादी के लगभग अर्द्धशतक

के बाद भी ऊँच-नीच की खाई पट नहीं सकी। अर्थ की महत्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। 'दिनकर' विषमता के इस स्वरूप को क्रान्ति के द्वारा बदलना चाहते हैं। कविताएँ दिल्ली अनल-किरीट, हाहाकार और दिगम्बरी आदि राष्ट्रीय-सामाजिक प्रेम की कविताएँ हैं।

रूमानियत की प्रधानता :

तीसरे काव्य-संकलन 'रसवन्ती' में रोमानी भावनाओं की प्रधानता है। 'नारी' नामक कविता में नारी की भाव-भंगिमा और उसके नेत्रों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है—

दृष्टि तुमने फेरी जिस ओर,
गयी खिल कमल-पंक्ति अम्लान;
हिंस्र मानव के कर से त्रस्त
शिथिल गिर गए धनुष औ' बाण।

'दिनकर' के आरम्भिक काव्य-चरण में स्वच्छन्दतावादी काव्य के दो तत्व-रोमानी वृत्ति और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना मुख्य रूप से देखे जा सकते हैं। आइए, सबसे पहले राष्ट्रीय: सांस्कृतिक चेतना के स्वर को हम उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' में ढूँढते हैं।

दिनकर की 'कुरुक्षेत्र काव्य कृति है 'साकेत' और 'कामायनी' के पश्चात् हिन्दी की एक प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है। इसमें आधुनिक युग की एक समस्या-विशेष, युद्ध के प्रश्न पर मार्मिक भाव-विचार व्यक्त किए गए हैं। इस महाकाव्य में महाभारत के युधिष्ठिर-भीष्म-संवाद की भूमिका को लेकर वस्तुस्थिति का उल्लेख किया गया है। इसमें विशेषकर युवकों को सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाकर खड़े होने और अनीति का अन्त कर समता और समानता के आधार पर नवीन समाज-निर्माण का संदेश देने में दिनकरजी ने नई परिस्थिति से ही प्रेरणा ग्रहण की है। अन्याय का अन्त युद्ध से हो, यही 'कुरुक्षेत्र' काव्य का मुख्य सन्देश है।

आचार्य वाजपेयी के शब्दों में—"कुरुक्षेत्र के कवि का मुख्य वक्तव्य यह है कि युद्ध अर्थात् हिंसात्मक युद्ध तब तक अनिवार्य है, जब तक संसार में सद्भावना, शान्ति और समता की प्रतिष्ठा नहीं होती।"

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या इसके लिए युद्ध ज़रूरी है? यदि ज़रूरी है तो फिर महात्मागाँधी के अहिंसात्मक दृष्टि का क्या तात्पर्य है? साधारणत: मनुष्य युद्ध प्रेमी नहीं होता। विवश होकर ही वह युद्धरत होता है। युद्ध का परिणाम क्या होता है?—विकास, सुव्यवस्था और शान्ति। यह उस समय की मार्क्सवादी विचार-धारा थी, जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर विशेष-रूप से पड़ा। इसके विपरीत गांधी विचार-धारा के अनुसार युद्ध का परिणाम होता है, विनाश, अव्यवस्था ग्लानि और पश्चात्ताप।

सामयिक युगबोध को लेकर दिनकर ने पौराणिक महाकाव्य महाभारत के आधार पर 'कुरुक्षेत्र' की रचना की, जिसमें दिमकर ने कहीं-कहीं युद्ध को अनिवार्य माना है। तृतीय-सर्ग में भीष्म-युधिष्ठिर का संवाद इस प्रकार है—

क्षमा, दया, तप, तेज, मनोबल
सबका लिया सहारा;

पर नर-व्याघ्र सुयोधन तुमसे,
कहो, कहाँ कब हारा ?
सच पूछो, तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि-वचन संपूज्य उसी का,
जिसमें शक्ति विजय की।

मनुज और दनुज :

मनुष्य स्वभावत: शान्ति-प्रेमी होता है। पर यह बात सब पर लागू नहीं होती। समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें शान्ति अप्रिय लगती है। सज्जन पुरुष की शिष्टता, नम्रता और सहिष्णुता की भावना को उसकी कमजोरी समझता हैं।

"मगर, यह शान्तिप्रियता रोकती केवल
मनुज को,
नहीं वह रोक पाती है दुराचारी
दनुज को।
दनुज क्या शिष्ट मानव को कभी
पहचानता है ?
विनय को नीति कायर की सदा वह
मानता है।

पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता एवं विज्ञान के प्रभाव के कारण भारत में बुद्धिवाद का उदय हुआ। भावपक्ष कमजोर होता गया। इस सम्बन्ध में दिनकर का विचार इस प्रकार है—

बुद्धि शासिका की जीवन की,
अनुचर मात्र हृदय था,
मुझसे कुछ सुनकर कहने में,
लगता उसको भय था।

उपर्युक्त पंक्तियों में तत्कालीन युगबोध की स्पष्ट झलक मिलती है। बुद्धि पर हृदय की चेतना अधिकार नहीं कर पाई है। मानव-प्रीति का भाव जागा नहीं है। मनुष्य अणुओं को तोड़ने में लगा है। वह सामाजिक विषमताओं को दूर करने के प्रति निरपेक्ष भाव रखता है। विज्ञान के संहारक स्वरूप से छुटकारा पाने केलिए कवि वैज्ञानिक दौड़ को बन्द कर देने की सलाह देता है—

सावधान मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक तजकर मोह, स्मृति के
पार;
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी
अज्ञान,
फूल कांटों की नहीं, कुछ भी तुझे
पहचान।

विज्ञान के स्थान पर मानव-हृदय को 'स्निग्ध', सौम्य और 'पुनीत' बनानेवाली प्रजा का अनुशीलन होना चाहिए। स्नेह-सिंचित न्याय पर नए विश्व का निर्माण हो।

कस्मै देवाय :

दिनकर जी साम्यवादियों की तरह सामाजिक, विषमताओं और अनीतियों को दूर करने केलिए दलित वर्गों को युद्ध केलिए ललकारते हैं; और साथ में भयमुक्त समाज की कल्पना करते हैं। मनुष्य जन्मना के आधार पर कोई भेद नहीं। सबके समान अधिकार हैं। इस विचार से मानवता फूल-फल सकेगी।

सबको मुक्त प्रकाश चाहिए,
सबको मुक्त समीरण,
बाधा रहित विकास, मुक्त
आशंकाओं से जीवन।

'रेणुका' में संकलित अपनी प्रसिद्ध कविता 'कस्मै देवाय में 'लाखों क्रौंच कराह रहे हैं' की बात दिनकर ने की हैं। ये लाखों क्रौंच भारत की अपार-जनता के प्रतीक हैं जो अभावों से त्रस्त है और यह मूक कंठ भी उसी जनता का है—जिसे गांधीजी पददलित कहते थे।

दिनकरजी की साम्यवाद की यह भावना कुरुक्षेत्र में आकर दर्शन के धरातल पर पहुँच गई और कवि ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा:

शांति कहाँ तब तक जब तक सुख भाग
नर का सम हो ?
नहीं किसी को बहुत अधिक हो नहीं
किसी को कम हो।

आजादी के बाद भी दिनकर को सन्तोष नहीं हुआ। 1947 में उन्होंने 'अरुणोदय' शीर्षक कविता लिखकर स्वाधीनता का स्वागत उन्मुक्त भाव से किया था।

किसने कहा, और मत बेधो हृदय वह्नि
शर से,
भरो भुवन का अंग कुसुम से, कुंकुम से
केसर से ?
कुंकुम लेपूं किसे ? सुनाऊँ किसको
कोमल गान ?
तड़प रहा आँखों के आगे भूखा
हिन्दुस्तान।

किन्तु स्वराज्य की प्रथम वर्षगांठ के आते-आते उनका उत्साह ठंडा पड़ गया और वे स्वाधीन भारत में भी असन्तोष की कविता लिखने लगे।

'दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक पुस्तक में कु. पद्मावती ने लिखा है कि 'दिनकर' की राष्ट्रीयता पौरुष की दीप्ति क्रान्ति की चिनगारी, रक्तदान और महानाश के तत्वों से निर्मित है।" इनकी राष्ट्रीयता के अन्तर्गत भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और उसके गौरव का भी समावेश है। देश की उस मिट्टी से उन्हें प्यार है जिसमें अतीत के गौरव चिह्न कृषक के स्वेद बिन्दु और शहीद के रक्त की बूंदे एक दूसरे से मिल रही हैं। 'दिनकर' की राष्ट्रीयता भावनाओं से आरम्भ होकर बौद्धिक एवं वैचारिक धरातल तक जाती है। भावात्मकता राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करती है तो बुद्धि वर्गीय असंतोष और यथार्थ चित्रों की योजना से उस गति को और भी उद्दीप्त करती है।

दो स्वर:

इस प्रकार दिनकर की राष्ट्रीयता के दो प्रमुख स्वर दिखाई देते हैं। पहला स्वर-अपेक्षाकृत अधिक उग्र है। दिनकर की उग्रता कभी व्यंग्य और कभी उद्बोधन में प्रकट हुई है। परन्तु उस उग्रता के साथ मानवतावादी स्वर और बौद्धिक-चेतना भी प्रबल है।

अन्त में दिनकर की शिल्प-चेतना पर संक्षिप्त रूप से विचार कर लेना मुनासिब होगा। इन्होंने अपनी कविताओं में ललकार-वाली भाषा का प्रयोग किया है। शब्दरूप में तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशज शब्दों का बहुत प्रयोग मिलता है। भाषा सरल, सहज और बोधगम्य है। कहीं कहीं भावों की गम्भीरता के कारण दुरूहता आ गई हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग मिलता है—

"थके सिंह आदर्श ढूंढ़ते, व्यंग्य बाण सहते है।
एक घाट पर किस राजा का रहता बँधा प्रणय हैं।

सामान्यत: दिनकर को अभिधा का कवि कहा जाता है। परन्तु लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग भी भरपूर मिलता है। अलंकारों में शब्दालंकारों की छटा दिखाई देती है। अर्थालिकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और विभावना आदि का प्रयोग मिलता है।

'दिनकर' की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक रचनाओं में ओज गुण की प्रधानता है। प्रेम प्रधान रचनाओं में माधुर्य और प्रसाद गुण मौजूद है। गेयता इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।

वस्तुत: दिनकर की राष्ट्रीयता और शिल्प-चेतना पर जितना भी कहा जाए वह कम ही है। मेरे विचार से इसकी सीमा का निर्धारण करना बहुत हो मुश्किल है। वे एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। कवि के साथ-साथ वे एक अच्छे निबंधकार, मुक्तककार और प्रबन्धकार भी थे। सबसे बड़ी विशेषता इस बात में है कि दिनकर जी एक अच्छे इंसान थे। बहुत सारी विशेषताओं के कारण ही उन्हें राष्ट्र-कवि का सम्मान मिलता था। यही उनकी राष्ट्रीयता का परिचायक है।

आज के संदर्भ में 'दिनकर' की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कविताएँ हमारे लिए सम्बल का काम कर सकती है, क्योंकि लोगों के दिलों से राष्ट्रीयता के भाव विलुप्त से होते दिखाई दे रहे हैं। वर्ग, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय और प्रान्तीयता कीं भावना प्रबल होती जा रही हैं। परम्परा और युगधर्म के बीच अन्तर दिखाई पड़ने लगा है। ऐसे माहौल में दिनकर की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक ओजस्वी वाणी बार-बार कानों से टकराकर कुछ सोचने केलिए विवश कर रही है।

समय आ गया है कि हम उनकी भावनाओं का अनुकरण करके हम नये समाज की रचना करें जो कि मानव-मानव में व्याप्त कटुता की भावना को दूर करके प्रेम और सद्भाव की गंगा बहा सके।

हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय
तालेगांव, गोवा-403203

★

इन रोटियों के नूर से सब दिल हैं बूर-बूर।
आटा नहीं है छलनी से छन-छन गिरे है नूर॥
हरगिज किसी तरह न बुझे पेट का तन्दूर।
इस आग को मगर ये बुझाती हैं रोटियाँ॥

—नकीर